पुल की परछाईं

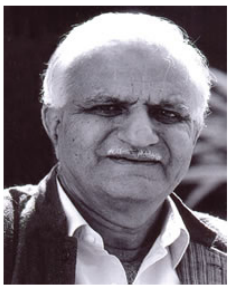

महेंद्र भल्ला

हिन्दी ADDA

पुल की परछाईं

आज तीसरा दिन था। ड्योढ़ी में स्त्रियाँ रो रही थीं। वह गली की तरफ मुँह करके दहलीज पर बैठा सामने इमली के पेड़ में देख रहा था। बीच में गली थी। ध्यान से देखने से ही इस पेड़ के पत्ते थोड़ा हिलते दिखाई देते थे। वरना सब चुप्पी थी। सिवाय स्त्रियों के रोने के। कभी-कभी कोई आता, अंदर की तरफ देखता, उदास-सा होकर चला जाता। उसके दोस्त भी आते। मगर उसे बुलाते नहीं। वह उठके उनके पास

जाता। वे एक-दो मिनट खड़े रहते आपस में भी बात नहीं करते। करते भी तो एक-दो शब्दों में फुसफुसाकर। फिर चल देते। गली के मोड़ तक वह उन्हें जाते देखता। उनकी चाल में अफसोस का ढीलापन रहता-एक जल्दी भी मातमवाले घर से दूर जाने की, जा के अफसोस को उतार फेंकने की।

स्त्रियों के रोने की एक खास गति बँध गई थी। जब उन्होंने पहले रोज रोना शुरू किया था तो उससे बर्दाश्त नहीं हुआ था। उसे लगा था मौत के बाद कुछ और भी उतना ही भयानक होने जा रहा है। तब वह साथ-साथ रोता रहा था, डरता भी। लेकिन अब उसे तभी रोना आता जब भाभी या माँ वीरेंद्र भाई की किसी बात को याद करके ऊँची चीख मारकर रो उठतीं। या कोई नई अफसोस करनेवाली आती और भाभी के गले मिलकर खूब रोती। तब वह अपने मकान की दहलीज से उठकर गली के पार सामने वाले मकान की दहलीज पर जा बैठता।

दूसरे वक्तों में अगर यहाँ बैठा उसे कोई देख लेता तो डाँट पड़ती। अब कोई कुछ नहीं कहता। पिताजी भी एक बार आए थे। मगर उनका चेहरा उसे देखकर और भी उतर गया था। वे जल्दी ही अंदर चले गए थे।

वह दो दिन से नहाया भी नहीं था। न ही कपड़े बदले थे। आज सुबह, रोने के लिए बैठने से पहले, माँ ने उससे कहा था कि वह नहाकर कपड़े बदल ले। माँ ने कपड़े निकालकर रख दिए थे। प्रेस किए नहीं, सिर्फ धुले हुए, मुचड़े - सलवटों से भरे हुए। चुपके-से नहाकर वह बाहर आया तो एक पल के लिए उसे लगा (नीचे रोना शुरू नहीं हुआ था) कि भयंकर स्थिति को हटाकर सब कुछ पहले-जैसा होने जा रहा है। मगर धुले कपड़े पहनने की उसे इच्छा नहीं हुई। उसने निक्कर पुरानी पहन ली लेकिन कमीज धुली हुई। उसके पास रूमाल नहीं था। जब उसे रोना आता था तो आँसू कमीज की बाँहों से पोंछता था। दो दिन में बाँहें काफी गंदी हो गई थीं। आँखों में चुभती थीं। कमीज पहनकर उसने बटन बंद नहीं किए। उसे महसूस हो रहा था कि उससे यही आशा की जा रही है।

ड्योढ़ी में रोने की आवाज तेज हो गई। वह उठा। बिना अंदर देखे, सामने घर के दरवाजे के पास जाकर बैठ गया। रोना जब भी तेज होता या जब भाभी या माँ चीखने लगतीं, उसका सारा शरीर डर से काँप उठता। उसे लगता कुछ और - अधिक भयावह -होनेवाला है। मगर अब वह रोता कम था। रोना तो उसे आता था मगर अब कोशिश करके वह कई बार उसे रोक लेता था।

उसके पास सिवाय बैठे रहने के और कुछ भी करने को नहीं था। ऊपर सब छोटे बच्चे आया के पास खेल रहे थे। एक-दो बार वह उनके पास गया, मगर वहाँ उसका जी नहीं लगा। साथ ही, हवेली में नीचे दरी बिछाकर पिताजी, चाचाजी आदि कस्बे के लोगों के साथ बैठे थे। एक बार वह वहाँ भी गया मगर चाचाजी ने उठा दिया, 'जाओ बेटा, तुम जाके खेलो।' उसकी इच्छा भी हुई वह खेलने चला जाए। मगर उसे अहसास हुआ, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। वह चुपचाप अपने घर के सामने बैठा रहा। बैठे-बैठे उसका ध्यान उन चीजों की ओर जाने लगा जिनके बारे में उससे पहले कभी सोचा भी नहीं था। उसने नोट किया कि जब भाभी रोती है तो कई बार यह कहती है, 'मैंने क्या पाप किया जो छोड़ गया...' या 'मुझे किसके सहारे छोड़ के चला गया...' एकदम ही उसे समझ में नहीं आया कि इसमें गड़बड़ कहाँ है। धीरे-धीरे उसने जाना कि भाभी, भाई साहब के लिए 'तुम', 'तू', 'छोड़ गया', आदि कहती हैं। 'आप' नहीं कहती, जैसे पहले कहती थी और जैसे औरतें पतियों को पुकारती हैं। उसे यह अजीब और थोड़ा गलत लगा। माँ से पूछूँगा, उसने सोचा।

उसने गली में देखा। गली के बीचोंबीच नाली थी, जो अक्सर साफ रहती थी। मगर कुएँ के पास दो गड्ढे थे, जिनमें गंदा पानी जमा रहता था। उन पर इंदर के दोनों छोटे भाई सरकंडों की छोटी नालियों में घोड़े की पूँछ के बाल डालकर पीली भिड़ें पकड़ रहे थे। जब एक पकड़ लेते तो उसका पहले डंक निकालते, फिर लंबे धागे का एक सिरा उसकी कमर से बाँध देते, दूसरा खाली माचिस की डिब्बी के साथ। छोड़ देने से भिड़ धाबे को लिए उड़ती। जब धागे की पूरी लंबाई उड़ लेती तो बच्चे माचिस की डिब्बी को उछालकर छोड़ देते या भिड़ को खींचकर डिब्बी में बंद कर लेते। मैं भी जब छोटा था तो इन्हें पकड़ा करता था, उसने सोचा। वह, दरअसल, दूसरे खेलों की तरह इसमें भी काफी माहिर माना जाता था। एक तो उसके पास घोड़े के बालों की कमी नहीं होती थी। घर की घोड़ी थी और वह पिताजी और चाचाजी से चोरी-चोरी जाकर पशुओं की हवेली से बाल ले आता था। दूसरे, वह इतने दबे पाँवों जाता था कि भिड़ को पता ही नहीं चलता था कि वह कब पकड़ी गई। हालाँकि उसे ऐसा करते ज्यादा दिन नहीं बीते थे तो भी उसे लगा मानो वह वर्षों पहले पीली भिड़ों से भरी डिब्बियाँ ट्रंकों के पीछे छिपाया करता था और उनको निकालकर गुड्डी और सरला को डराया करता था।

दोनों बच्चे एक भिड़ पकड़ पाए थे। बहुत उड़ाने से उसकी कमर टूटकर अलग हो गई थी। आधी भिड़ फड़फड़ा रही थी। एक बच्चे ने उसे माचिस की डिब्बी से कुचल दिया, दूसरा तल्लीन देखता रहा। डिब्बी को फेंककर दोनों भागकर घर चले गए।

गली खाली हो गई। उसने घुटनों के बीच सिर झुका लिया और एक तिनका उठाकर पैरों के आगे यों ही लकीरें बनाने लगा। स्त्रियों का रोना बराबर एक 'लय' के साथ चल रहा था। ऐसे चलने से उसका असर नहीं होता था। उसने देखा उसके पैरों पर धूल और मैल जमी है। नहाते वक्त उसने साबुन नहीं लगाया था, न ही तौलिए से अपने को अच्छी तरह पोंछा था। उसे ऐसा करने में झिझक हुई थी। पैरों के ऊपर टखने थोड़ा बाहर निकले थे। टाँगें लंबी और पतली थीं। उसने देखा उसकी टाँगों पर छोटे-छोटे काले बाल उग आए हैं। पहले उसने उन्हें नहीं देखा था। उसे हल्की हैरानी हुई। झुक के बैठने से घुटने भी बड़े-बड़े लग रहे थे। कुछ दिन पहले जब उसने गुड्डी को पीटा था तो पिताजी ने डाँटते हुए कहा था, 'अब तो अक्ल से काम किया कर! मूँछ-दाढ़ी आ रही हैं।' उसने अनायास हाथ से ठुड्डी को छुआ। वहाँ कुछ नहीं था। उसकी तीव्र इच्छा हुई जा के आईने में देखे। मगर वह गया नहीं। उससे एक तरह से उठा ही नहीं गया। सोच का बंधन-सा होता है, उसी में बँधा बैठा रहा।

यह सब देखते-सोचते वह फौरन सिर उठा लेता जब रोने की गति में फर्क आता या गली से कोई गुजरता।

एकाएक उसे खयाल आया कि अब भाईसाहब नहीं है, भाभी क्या करेगी? उसे याद हो आया कि मेहर झीर (पानी भरनेवाला) जब मरा था तो उसके छोटे भाई गुलाब ने उसकी पत्नी को 'कर' लिया था।

'मैं तो ऐसा नहीं कर सकता, कभी नहीं कर सकता।' उसने बुरी तरह डरकर मन में कहा। उसने इधर-उधर देखा जैसे कभी-कभी माँ के ट्रंक से पैसे खिसकाते वक्त देखा करता था। कोई उसे देख नहीं रहा था। तो भी उसे लगा उसके विचार 'बेशर्म' हो रहे हैं। उसे पता नहीं था कि शादी का उस तरह का चलन उनके यहाँ नहीं है। उसने कुएँ की तरफ देखा जहाँ गुलाब सुबह-सुबह पानी भरने आता था। लेकिन उसकी नजर कुएँ के पास आती एक औरत पर पड़ी। उसकी शक्ल और चाल से उसने जान लिया कि वह दूसरे शहर से अफसोस करने आई है। वह उसके पास पहुँची तो उसने देखा, वह धीरे-धीरे रो रही थी। उसे लगा, उसने रोना अभी-अभी शुरू किया था। बाहर से आनेवाली बूढ़ी औरतों की तरह बस के अड्डे से ही रोती नहीं आ रही थी। इसका मतलब है वह पढ़ी-लिखी है। पिछले तीन दिनों से अफसोस करने आती औरतों में उसने यह भेद कर लिया था। अनायास ही सीख और आदत से उसके हाथ नमस्ते के लिए उठे मगर उन्हें उसने रोक लिया। उसने इन दिनों किसी को नमस्ते करते नहीं देखा था।

अंदर जाते ही वह स्त्री भाभी के गले लिपट गई और दोनों बेतहाशा रोने लगीं मानो वह स्त्री बाहर से रोने की नई शक्ति लाई हो। वे बहुत देर तक जोर-जोर से और फूट-फूटकर रोती रहीं। उसे अहसास हुआ कि यह कोई खास औरत है। इसके पहले भी, जब वह कुएँ के पास थी, उसे कुछ ऐसा ही महसूस हुआ था। एक तो, उसने सोचना शुरू किया, बाहर से आई तमाम औरतों की अपेक्षा वह उम्र में छोटी थी। दूसरे, लेकिन दूसरे क्या? यह उसकी समझ साफ नहीं कर पाई। वह उठा और अंदर झाँकने लगा। वह भाभी के पास बैठी थी। दोनों की आँखें और मुँह रोने से लाल हो गए थे। सिर पर दुपट्टे नहीं थे, बाल कुछ कनपटियों से चिपके थे, बाकी बिखरे थे, रूखे। दोनों के चेहरे आपस में मिलते थे। ड्योढ़ी के अर्द्ध-अंधकार में दिखे दोनों चेहरे बहुत देर तक उसके मन पर तैरते रहे।

धीरे-धीरे रोना अपने पुराने स्तर पर आ गया। बीच-बीच में औरतें बातें भी कर लेती थीं। दोपहर होने को आई थी। एक-दो औरतें उठकर चली भी गई थीं। वह आकर अपनी जगह पर फिर बैठ गया। वह बैठा ही था कि गुड्डी उसके पास आई।

'विमल! माँ कह रही हैं रोटी खा लो!' उसने देखा, गुड्डी की सफेद फ्राक काफी मैली है। लेकिन उसके बाल कंघी किए हुए थे। शायद आया ने की हो।

'खा लेता हूँ, तू जा', उसने अपने रोजमर्रा के रूखे-से स्वर में कहा। गुड्डी उसकी तरफ देखती खड़ी रही। एकाएक विमल के मन में हल्की-सी कोमलता पैदा हो गई। उसे गुड्डी पर तरस-सा आया। उसने नर्मी से पूछा, 'गुड़डी! तू खा चुकी है क्या?'

'हाँ!'

'और सरला?'

'उसने भी खा ली है। हम सब बच्चों ने खा ली है। तुम रह गए हो!' गुड्डी ने अपलक देखते हुए कहा। गुड्डी की यह बिना आँख झपके देखने की आदत उसे पसंद नहीं थी। एक-दो बार उसे इस बात पर वह पीट भी चुका था। गुड्डी को शायद पता चल गया कि वह बिना आँख झपके विमल को देख रही है। उसने एकदम आँखें नीची कर लीं। विमल ने देखा और कहा, 'तू चल, गुड्डी! मैं आता हूँ।'

गुड्डी के जाने के बाद वह कुछ देर तक गली में देखता यह सोचता रहा कि अच्छा होता अगर वह गुड्डी के साथ ही ऊपर चला जाता। स्त्रियों में से अकेले जाने में उसे झिझक होती थी। ऊपर जाने का रास्ता ड्योढ़ी में से ही था। खाली गली में उसे कुछ भी

आकर्षक नहीं लगा तो वह ड्योढ़ी की तरफ बढ़ा। जैसे ही वह बिना किसी को देखे, नीची नजरें किए औरतों के झुंड में से जा रहा था, उसे सुनाई दिया -

'यह उससे छोटा है?'

'हाँ!'

उसे लगा, तमाम आँखें उसकी तरफ उठ गई हैं। उसे अजीब डर लगा। वह भागता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ गया।

ऊपर रसोई में ढेरों रोटियाँ रखी थीं। जब से मौत हुई थी उनके घर रोटी नहीं बनती थी। कस्बे के लोग दे जाते थे। उसने देखा, रोटियों के ढेरों के बीच गुड्डी घिरी बैठी है। उसे लगा, रोटियाँ मानो रोती हुई स्त्रियाँ हैं जिनके बीच गुड्डी घिरी बैठी है। वह उसके पास जाकर बैठ गया और खाना खाने लगा। वे दोनों चुप थे। गुड्डी उसके हाथों को कौर तोड़ते और मुँह में ले जाते देख रही थी। उससे आँखें मिलते ही पलकें झुका लेती थी। वह उसे एकटक न देखकर मानो उसे खुश कर रही थी। विमल हल्के से काँपा और उसे रोना-सा आ गया।

'गुड्डी, तू जा, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।' उसने कहा।

गुड्डी अंदर दूसरे बच्चों के पास चली गई तो उसने जल्दी से खाना खत्म किया और अंदर जाकर बच्चों को खिलाने लगा। आया सो रही थी। उसे उसने नहीं जगाया। बच्चे उसके आने से खुश हो गए थे। अगर लड़ पड़ते तो उसके पास आकर शिकायत करते। उसे अहसास हो रहा था कि वह उनकी रक्षा कर रहा है। जो हुआ है उससे नहीं बलिक उससे जो होनेवाला था। उसे पक्का विश्वास था कि कुछ और जरूर होगा। सारा वातावरण ही कुछ इस तरह का था। जब वह यह सोच रहा था, उसके कानों में नीचे ड्योढ़ी में बँधी गति से रोने की आवाज सुनाई दे रही थी। उस बँधी गति में कुछ ऐसा था, बाजार की भीड़ की सतत भनभनाहट की तरह, कि उसे लगा, मगर वह साफ नहीं कर पाया कि क्या लगा, शायद कि सब ठीक है।

बच्चे धीरे-धीरे फर्श पर ही सोने लगे थे। उसे भी नींद आने लगी। उसकी नजर गुड्डी पर पड़ी। वह दहलीज पर ही लुढ़क-सी गई थी। लकड़ी की दहलीज का कोना उसकी मलमल की फ्राक को दबाता हुआ उसके जिस्म में चुभ रहा था। थोड़ा-सा कोना उसकी बाँह में चला गया था। कोमल बाँह का मांस कटा-सा लगता था। उसने गुड्डी को

उठाकर चारपाई पर लिटा दिया। उसकी बाँह पर लाल निशान पड़ गया था। उसे धीरे-धीरे कम होते देखता वह भी सो गया।

जब वह जागा तो शाम हो चुकी थी। रोना बंद कर नीचे से घर की औरतें ऊपर आ रही थीं। भाभी को माँ और नई आई स्त्री ने पकड़ रखा था। आते ही भाभी ने घर को चारों तरफ देखकर चीख मारी और बेहोश हो गई। पिछले तीन दिनों में वे कई बार बेहोश हुई थीं। विमल के लिए नई बात नहीं थी। मगर उसने देखा, सभी बच्चे अनायास ही एक-दूसरे से सटे, डरे बाहर देख रहे हैं। गुड्डी सहमी, रोने भी लगी थी।

'आओ, इधर आओ', कहकर वह बच्चों को अंदर के कमरे में ले गया और पिछवाड़े की खिड़की में खड़ा कर दिया। खुद बाहर आकर कमरे का दरवाजा बंद कर दिया। उस लग रहा था कि बच्चों को यह रोना-धोना नहीं देखना चाहिए। वह अजीब तरह से ज़िम्मेदार महसूस कर रहा था।

भाभी को उसके कमरे में ले गए थे। सब औरतें कह रही थीं, उसे कुछ खा लेना चाहिए।

'मरे के साथ मरा तो नहीं जाता!'

'वह तो सब छोड़ गया। उसके पीछे क्या-क्या छोड़ेगी!'

'जब तक जिंदगी है कुछ नहीं छूटता!'

उसे फिर लगा कि जिस तरह भाईसाहब के बारे में बात करते हैं ('वह तो मर गया...'), वह कहीं गलत है। कम-अज-कम वह ऐसा नहीं कर सकता।

इतने में पिताजी आ गए। उन्होंने अंदर जाती माँ को कहा, 'दरवाजा तो बंद कर लो। बच्चे हैं।' बच्चे अब तक दरवाजा खोलकर फिर झाँक रहे थे। गुड्डी बाहर आकर खड़ी हो गई थी। पिताजी के होने से उसने उन्हें अंदर नहीं भेजा। अब जो भी करेंगे, वे ही करेंगे, उसने सोचा और चुपचाप खड़ा रहा। पिताजी ने उसे अपने पास बुलाया और कहा, 'जा, अपनी माँ से कह सुशीला को चाय बनाकर पिलाए और मुझे भी एक प्याला दे दे।' यह कहकर वे चुप हो गए और उठकर छत पर चले गए।

माँ ने चाय बनाई और गिलास और प्याली देकर विमल को ऊपर भेज दिया। एक गिलास में वह भाभी के लिए खुद ले गईं। वह ऊपर गया तो पिताजी चारपाई पर लेटे थे। उसने चाय उन्हें थमा दी और पास ही खड़ा हो गया।

'ले, तू भी पी ले!' उन्होंने बड़े प्यार से उसे कहा और प्याले में थोड़ी चाय डालकर उसे दी। एक तो वह चाय पीता नहीं था। दूसरे, पिताजी बहुत सख्त आदमी थे। उनसे उसे बहुत डर लगता था। उन्हें इस तरह बर्ताव करते देख उसे न जाने क्यों गुड्डी का खयाल हो आया और वह रुआँसा हो गया। जल्दी-जल्दी चाय पीकर वह नीचे आ गया।

सोते वक्त उसे बहुत पसीना आ गया था। सुबह गली में बैठे-बैठे भी उस पर धूल चढ़ गई थी। वह बहुत गंदा हो गया था। उसका मन हुआ अपने को अच्छी तरह से धो डाले। वातावरण के कारण मन पर भी एक मैली झिल्ली आ गई थी - उसे भी रगड़कर साफ कर डाले। उसने कमीज उतार दी और तौलिया लेकर गुसलखाने में चला गया। वहाँ एक खिड़की थी, जो साथवाली हवेली में खुलती थी। वहाँ से नीम का नया पेड़ सबसे पहले दिखाई देता था - एकदम साथ ही था। उसके होने से अगर बाहर झुटपुटा होता तो गुसलखाने में अँधेरा। हर शाम की तरह आज भी उस पर सैकड़ों गुरैय्या इकठ्टी हो बोल रही थीं। झुटपुटे के साथ-साथ उनका स्वर भी-हवेली में ठसाठस भरा था। झाँकने से नीम के नीचे कुछ दिखाई नहीं देता था। खालीपन था। खिड़की से थोड़ा हट जाने से गुरैय्यों का स्वर बदला हुआ लगता था। रोज जब वह खेल के आता तो नहाते या मुँह-हाथ धोते वक्त एक-दो बार खिड़की में जाता, फिर एकदम ही हट जाता - स्वर की बदली हुई 'शक्ल' उसे बड़ी आकर्षक लगती।

आज भी सबकुछ वैसा ही पाकर वह भूल गया कि घर में कुछ हुआ है, अगर हुआ है तो उससे कोई फर्क पड़ा है। तल्लीन होकर वह नहाने लगा। पैरों, टाँगों और सारे जिसमें को उसने अच्छी तरह से धोया और रगड़-रगड़ कर तौलिए से पोंदा। तौलिया कमर में बाँध वह रोज की तरह अंतिम बार खिड़की से गुरैय्यों के स्वर के अंतर को सुनने गया।

'विमल!' अचानक उसने अपना नाम सुना। आवाज बहुत पास और अपरिचित थी। उसने मुड़कर देखा। नई आई स्त्री गुसलखाने के जरा बाहर दीवार से सटकर खड़ी उसे देख रही थी। नहाते वक्त उसने गुसलखाने का दरवाजा बंद नहीं किया था। असल में घर में सिर्फ बड़े ही दरवाजा बंद करते थे। छोटे बच्चे नहलाए जाते थे, जो नहलाए नहीं जाते थे उन्हें दरवाजा बंद करने की जरूरत नहीं होती थी।

विमल को लगा, वह वहाँ बहुत देर से खड़ी है। वह थोड़ा शरमा गया।

'तुम विमल ही हो न?' स्त्री ने पूछा।

'जी!' उसने देखा, उसकी आँखें लाल थीं और वह बहुत थकी-मैली लग रही थीं।

'मुझे पहचानते हो?'

'आप सुबह आई थीं।' वह मुस्कराई। विमल को लगा उसने शायद गलत जवाब दिया है। उसकी बाँहें अनायास ही उठीं और अपनी नंगी देह को ढाँपने की कोशिश करने लगीं। इस पर वह फिर मुस्कराई। फिर एकाएक गंभीर होकर बोली, 'मैं सुशीला की बहन हूँ, तुम्हारी भाभी के चाचे की लड़की - सीता!'

वह चुपचाप उसे देखता रहा। उसे समझ में नहीं आया कि क्या करे?

'मेरा मुँह-हाथ धुलाओगे?' सीता ने कहा।

वह कुछ बोला नहीं, झुककर उसने लोटा उठाया और भरे टब से भरकर खड़ा हो गया - 'धोइए!'

सीता ने अपना दुपट्टा उतारकर खूँटी पर लटका दिया और बैठकर पहले हाथों को साबुन से अच्छी तरह साफ किया। फिर आँखों में जोर-जोर से छींटे मारने लगी। उसकी बाँहें सुडौल और गोरी थीं। उसकी आँखें भाभी की तरह काली मगर होंठों के ऊपर कोनों की तरफ महीन भूरे बाल थे, जो पानी पड़ने से इकट्ठे हो गए थे और साफ दिखाई देते थे। धीरे-धीरे मुँह पोंछती वह निरंतर विमल को देख रही थी। विमल को अभी तक शर्म आ रही थी। एकाएक उसे लगा, वह अब ऐसे ही खड़ा है। उसका काम तो कब का खत्म हो चुका था। दीवार का सहारा छोड़कर वह बाहर की तरफ बढ़ा।

'सुनो!' सीता ने पीछे से आवाज दी।

वह लौटा। उसके पास गया तो उसने फुसफुसाकर पूछा, 'ड्रेसिंग टेबल कहाँ है?' उसे कुछ अजीब लगा। लेकिन वह सीता को उस कमरे में ले गया, जहाँ शीशा आदि रखा रहता था। उसी कमरे में उसके कपड़ों की अलमारी भी थी। उसने कुर्ता-पाजामा निकाला और कनखियों से शीशे के आगे झुकी स्त्री को देखता दूसरे कमरे में चला गया। कपड़े पहनकर जब वह बाहर आया तो वह भी वहाँ बैठी चुपचाप इधर-उधर देख रही थी।

रात को सोते वक्त माँ और बड़ी बहन की बातों से मालूम हुआ कि भाई साहब की शादी पहले सीता से ही होने जा रही थी। मगर किसी वजह से नहीं हुई।

दूसरे दिन शाम को खाने के बाद माँ और पिताजी ने उसे अपने पास बुलाया। उसे दोनों फकीरों की तरह चारपाई पर बैठे लगे। वह पास जाकर खड़ा हो गया। दोनों कुछ देर चुप रहे।

'बैठ जाओ विमल।' माँ ने कहा। वह चारपाई के पैताने बैठ गया और नीचे मुँह करके फर्श को देखने लगा।

'अब तुम्हें ही ज़िम्मेदारी...' पिताजी ने कहना शुरू किया मगर माँ ने बीच में ही हाथ उठाकर उन्हें बोलने से रोक दिया। विमल को लगा, कोई महत्वपूर्ण बात है और माँ को पिताजी का शुरू करने का ढंग पसंद नहीं आया। वे विमल को अच्छी तरह जानते भी नहीं थे।

माँ ने कहा, 'कल सुशीला की बहन सीता जा रही है। तुम उसे छोड़ आ सकते हो क्या?'

'कहाँ?'

'नावों के पुल तक। वहाँ उसके पति उसे लेने आएँगे।'

नावों का पुल घर से तीन मील दूर था।

'वे यहाँ नहीं आएँगे?' उसने पूछा।

माँ और पिताजी ने एक-दूसरे को देखा। फिर माँ ने कहा, 'नहीं। वे इस घर में नहीं आएँगे। तुम्हें पता है उनसे हमारा झगड़ा है!'

'पर सी... से कैसे आ गईं?'

'वह तो बहन है। बहन से ऐसे मौके पर कहाँ रहा जाता है!'

वह सोचता हुआ चुप रहा। उसे मालूम था यहाँ भी उनके और दर्शन के घरों का आपस में झगड़ा था। फिर भी-दोनों घरों की औरतें आपस में मिल लिया करती थीं। चोरी-चोरी! दादाजी, पिताजी या चाचाजी या भाई साहब (जब वे जिंदा थे) को पता चल जाता तो वे डाँट देते थे।

'लेकिन जाओगे कैसे-नौकर सब खेतों पर गए हैं। बैसाख है। फसलों का कटना जरूरी है। तुम तो जानते ही हो। ताँगा जा नहीं सकता। अच्छा नहीं लगता, और फिर

चलाएगा कौन?' कस्बे में भाड़े पर ताँगे नहीं मिलते थे। ताँगा सिर्फ उन्हीं के पास था जो उन्होंने सैर आदि के लिए रख छोड़ा था।

'तेरे पिताजी को भेज देती लेकिन ऐसे वक्त में किसी को छोड़ने नहीं जाते। तुम छोटे हो। तुम्हारी कोई बात नहीं।'

वह चुप रहा।

'तुम ऐसा करो, उसके पास सामान तो है नहीं, एक थैला ही है। साइकिल के पीछे बिठाकर छोड़ आओ।'

'रास्ते में रेत है। साइकिल चलेगी नहीं।' उसने कहा। उसे लगा उसे वह काम करने को कहा जा रहा है जो ठीक नहीं है। मगर उसने यह भी महसूस किया कि घरवालों पर एक भार आ पड़ा है जिसे उतारने में उसकी सहायता जरूरी है। इसलिए उसने ज्यादा आपत्ति नहीं की। असल में उसे डर लग रहा था। और भीतर एक आकर्षण का आभास भी।

'जहाँ रेत आ जाए, वहाँ पैदल चल लेना - यह काम जरूरी है। पराई लड़की है...!'

साइकिल उनके पास थी नहीं। उसकी अपनी छोटी साइकिल थी जो दादाजी लाहौर से लाए थे। मगर उस पर तो वह खुद ही अब मुश्किल से बैठ पाता था। सामने इंदर के पास नई बड़ी साइकिल थी। उससे लेकिन वह बोलता नहीं था - उनका आपस में झगड़ा था। इसलिए पिताजी खुद साइकिल माँगने गए। साइकिल लाकर उन्होंने ड्योढ़ी में खड़ी कर दी।

सुबह माँ ने उसे जल्दी जगा दिया। सीता पहले से ही तैयार बैठी थी। अपने थैले के पास वह चुपचाप इस तरह बैठी थी कि विमल को लगा उसे घर से निकाल रहे हैं। जल्दी से नहाकर उसने नाश्ता किया। सीता ने कुछ भी खाने से इन्कार कर दिया। माँ ने, और एक बार दूर से ही पिताजी ने भी, कहा मगर उसने कुछ नहीं खाया। विमल को यह बात समझ में नहीं आई मगर न जाने क्यों उसे खुद नाश्ता करना बुरा-सा लगा। भाभी नहीं थी। वह रात को बहुत रोई थी। उसकी आँख अभी-अभी लगी थी। उसको जगाना किसी ने ठीक नहीं समझा हालाँकि वह ऊपर छत पर सो रही थी, सब फुसफुसाकर बात कर रहे थे।

उसने साइकिल निकाली। माँ, पिताजी और बड़ी बहन नीचे आए। 'आइए बैठिए।' विमल ने कहा और साइकिल को कसकर पकड़ लिया। सीता थोड़ा झिझकी।

'विमल, थोड़ा-सा पैदल चले जाओ। आगे जाके बैठ जाएगी।' माँ ने उसके संकोच को देखकर कहा। असल में वह खुद भी थोड़ा अचकचा रहा था। माँ के इस तरह से कहने से उसे आसानी का अहसास हुआ। माँ को तरीके बहुत आते हैं, उसने सोचा।

गली में झुटपुटा और सन्नाटा था। सिर्फ कुएँ पर गुलाब के पानी भरने की आवाज आ रही थी। गली के आखिर में उसने मुड़कर देखा। माँ, पिताजी और बड़ी बहन उन्हें देख रहे थे - हल्के धुँधले। उसे लगा मानो वह पहली बार स्कूल भेजा जा रहा हो। मन में एक गर्व भी था कि उसे एक बहुत जरूरी काम सौंपा गया है।

अपनी गली पार करने के बाद उसने मोड़ पर साइकिल खड़ी कर ली और कहा, 'आइए बैठिए!'

'विमल!' उसने लगभग पुचकारते हुए कहा, 'थोड़ा पैदल न चल लें!' बिना कुछ और बात किए वे चलने लगे। विमल को याद आया कि कस्बा पार करने के बाद एकदम रेत आ जाती है। साइकिल चलेगी नहीं। साइकिल का फिर क्या फायदा है, उसने थोड़ा खीजकर सोचा। मगर चुप रहा।

गलियाँ खत्म करके वे बाजार में पहुँचे। वहाँ साइकिल चलाना आसान था। गलियों की तरह नालियाँ बीच में नहीं थीं, सिरों पर थीं। मगर इस बार विमल ने नहीं कहा, 'आइए बैठिए।' उसे डर था कि वह फिर कह देगी, 'थोड़ा पैदल चल लें, विमल!' बाजार की सब दुकानें बंद थीं। कहीं-कहीं एक-दो कुत्ते दिखाई पड़ जाते थे। एकाएक उसे लगा, वह उसके पीछे-पीछे जा रहा है। मानो सीता उसे छोड़ने जा रही हो, वह उसे नहीं।

'आइए, अब बैठिए!' उसने थोड़ी दृढ़ता से कहा। सीता ने उसे देखा और चुपचाप कैरियर पर बैठ गई। विमल को हल्की खुशी हुई। उसने जोर लगाकर साइकिल चलाई, थोड़ा लड़खड़ाया, फिर सँभलकर ठीक हो गया। और साइकिल धीमी निश्चित गति में चलने लगी। दोनों की चुप्पी ऐसी पूरी थी, सुबह का झुटपुटा भी कुछ इस तरह मौन खड़ा था कि हर चीज, हर बात नई और प्रखर लगी। एक खास मतलब से भरी हुई। उसे तब महसूस हुआ कि सबकुछ ऐसे ही चलता है - लड़खड़ाकर एक धीमी निश्चित गति में चलने लगता है। उसे स्त्रियों के रोने की बेअसर बँधी गति याद हो आई। यह सब उसने सिर्फ महसूस किया। अहसास को छाँटकर समझ बरसों बाद पाया।

पीछे कैरियर पर गद्दी नहीं थी। बाजार सीधी चिनी हुई ईंटों का था। कई जगह गड्ढे थे। विमल को याद आया कि जब वह किसी दोस्त की साइकिल के पीछे बैठकर आता तो उछलने से कैरियर चुभता। लेकिन अब ज्यादा वजन होने से साइकिल कम उछल

रही थी। एक जगह गड्ढा बड़ा था जिससे वह बच नहीं पाया। वे जोर से उछले, साइकिल थोड़ा लड़खड़ाई मगर जल्दी ही विमल ने उसे सँभाल लिया।

'कैरियर चुभता तो नहीं है?' उसने पूछा।

वह हँसी, 'नहीं।' वह कुछ इस तरह से हँसी कि उसका मतलब समझ न आने पर भी वह हँस पड़ा।

आगे गड्ढे ज्यादा थे। 'मेरा खयाल है मैं उतर ही जाती हूँ। थक जाऊँगी तो बैठ जाऊँगी!' उतरने के बाद मुस्कराकर बोली, 'लेकिन थकूँगी नहीं। अभी बूढ़ी नहीं हुई।' विमल ने उसकी तरफ देखा। झुटपुटे को धकेलती सुडौल देह। वह चुप रहा।

घाटी पर पहुँचे तो उजाला होने लगा था। वहाँ से उन्हें नदी दिखाई दी - लंबी सीधी चमकती रेखा और उत्तर की तरफ नावों का पुल बादल की धुँधली परछाईं-सा ।

'यह तो दूर नहीं है।' सीता ने कहा।

'लगता नहीं, है काफी दूर।'

घाटी उतरते ही रेत थी। रेत के टीलों के बीच बरसात के पानी द्वारा बनाया रास्ता, जिसे पानी न पड़ने पर लोग इस्तेमाल करते थे। रेत बहुत थी। पैर धँसते थे। साइकिल भी धँस रही थी। उसे खींचने में काफी जोर लगाना पड़ रहा था। उनका ध्यान चलने में ही लगा था। दोनों चुप थे। सीता को वह कनखियों से देख रहा था। वह बहुत मुश्किल से चल रही थी। एक जगह रुककर उसने सैंडल उतार उनमें से रेत निकाली। कुछ कदम अच्छी तरह चली, फिर खड़ी हो गई।

'मैं सैंडल उतार ही देती हूँ। इनसे चला नहीं जाता।' उसने झुककर सैंडल उतार दिए। जब वह सैंडल उतारने के लिए झुकी थी तो उसका मुँह लाल हो गया था और उसके होठों के ऊपर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। औरतें कुछ भी नहीं कर सकती हैं, उसने सोचा। रेत में चल नहीं सकतीं, भाग नहीं सकतीं, लड़ नहीं सकतीं। उसे उस पर तरस आ गया। सैंडल उतारकर वह उन्हें अपने थैले में डालने लगी, जो साइकिल के हैंडल से झूल रहा था। मगर थैला ठसाठस भरा था। कोशिश करने पर भी जब सैंडल उसमें नहीं आए तो हैरान होकर वह विमल को देखने लगी।

'लाइए, मुझे दीजिए!' सैंडल देते समय वह थोड़ा झिझकी।

वह मुस्कराया।

उसे याद हो आया कि जब वे कभी बाहर जाते तो माँ अक्सर कुछ चीजों को ठीक से सँभाल नहीं पातीं। तब पिताजी कहा करते, 'ला मुझे दे!' और वे उन चीजों को किसी तरह ठोंस-ठाँस देते थे।

'आप जरा हैंडल थामिए', विमल ने आज्ञा के-से लहजे में कहा। और सैंडल के दोनों पैरों को अच्छी तरह से एक-दूसरे से मिलाकर, उनकी तनियों को ठीक से समेटा और कैरियर में अटका दिया। सैंडल गर्म और मुलायम थे।

इस आसान हल से दोनों हँसे और चलने लगे। विमल ने देखा उसके पैर छोटे और बहुत साफ हैं। पहले गुलाबी एड़ियाँ रेत में धँसती हैं, फिर पैर। थोड़ी दूर चलने पर ही रेत में होती महीन धूल उन पर जमा हो गई। बागवाले पुल तक पहुँचते-पहुँचते वे अच्छी तरह से धूसरित हो चुके थे।

पुल पर पहुँचकर दोनों रुक गए। रेत खत्म हो गई थी। पक्की मिट्टी पर पैर रखते ही उनको आराम मिला। साथ ही थकावट की गहराई का पता चला। विमल ने साइकिल खड़ी कर दी और दोनों लकड़ी के जँगले पर खड़े हो गए। नीचे पानी था। एकदम खड़ा। ध्यान से देखने से ही मालूम पड़ता था कि पुल के नीचे एक कोने में पानी की त्वचा पर सलवटें पड़ रही हैं। पानी एक बारीक लकीर में बह रहा था। पानी का गहरा कुंड था जो पुल के नीचे से शुरू होकर पूरब की तरफ आधा फर्लांग चला गया था। दोनों तरफ सरकंडों की तीखी झाड़ियाँ थीं - पानी उन्हीं में बँधा खड़ा था। पानी के परे दो-तीन खेत थे, जिनके पीछे शीशम के पेड़ों की दो कतारें दूर तक चली गई थीं। इन्हीं पेड़ों के बीच से होकर उन्हें जाना था। विमल ने फिर देखा कि पानी के नीचे काई की मोटी हरी तक थी जिससे पानी हरा लगता था।

शीशम के पेड़ों के पीछे निकले सूरज की छनकर आती आभा कुंड के ऊपर लाल बादल-सी इकट्ठी हो गई थी। यह लाल 'बादल' पानी में दिखाई दे रहा था। इतनी चमकीली और ठंडी (हवा हल्के से चल रही थी) सुबह को देखकर हमेशा की तरह आज भी उसे लगा कि उसके अंदर कहीं आँखें खुल रही हैं।

उसकी इच्दा हुई वह सीता से भी पूछे। मगर सवाल को अच्छी तरह से बना न पाने से वह चुप रहा।

उन्होंने नीचे देखा। हरे और अरुण रंगों के बीच उन्हें अपनी शक्लें दिखाई दीं। सीता एकदम पीछे हट गई।

'पानी में मुँह नहीं देखना चाहिए।' उसने कहा।

'क्यों?'

'आदमी गरीब हो जाता है।'

बात इतनी संजीदगी से कही गई थी कि विमल के मन को बैठ गई। उसके बाद जब भी वह पानी में अपनी शक्ल देखता उसे सीता की याद हो आती।

'आप जानती हैं यहाँ पानी कितना गहरा है? ...इसकी थाह नहीं है!' सीता ने उसकी तरफ विस्मय से देखा मानो कह रही हो, 'अच्छा!'

'और यहाँ का पानी कभी नहीं सूखता। नदी यहाँ से दूर है। सिर्फ बाढ़ के दिनों में, वह भी किसी-किसी साल, पानी यहाँ आता है!'

'शायद अंदर चश्मा हो!'

'हो सकता है!' उसने बड़े ध्यान से जवाब दिया। फिर कुछ याद करके बोला, 'आपको पता है यह पुल किसने बनवाया था? ...मेरे दादाजी ने। आपको नहीं मालूम! यह तो सब जानते हैं! उन्होंने एक डिस्पेंसरी बनवाई। एक हाई स्कूल, जिसमें मैं पढ़ता हूँ और एक यह पुल! दादाजी के पास एक घोड़ी थी। कहते हैं इलाके में उसके मुकाबिले की दूसरी नहीं थी। एक दिन वे शाम को अपनी जमीनों का चक्कर लगाकर आ रहे थे। तब यह पुल नहीं होता था, उधर से (उसने पश्चिम की ओर इशारा किया।) पानी मामूली गहरा है, वहाँ से ही पहले लोग आया-जाया करते थे। लेकिन उस दिन गलती से या कैसे उन्होंने घोड़ी को यहाँ से डाल दिया। पता नहीं क्या हुआ। कोई कहता है घोड़ी को साँप ने काट लिया, कोई कुछ कहता है, मगर घोड़ी डूबने लगी। दादाजी ने बड़ी मुश्किल से अपने को घोड़ी से अलग किया - रकाबों में पैर फँसे थे - और तैरकर बाहर आ गए। घोड़ी मर गई। कहते हैं उन्हें इसका बड़ा दुख हुआ। तब उन्होंने यह पुल बनवाया।'

वह बड़े जोश से यह सुना गया। सीता उसके सुनाने में तल्लीन थोड़ा तमतमाए चेहरे को एकटक देख रही थी। उसने उसे एक बार फिर गौर से देखा और कुछ पूछने के लिए होंठ खोले मगर चुप रही। फिर बोली, 'यह जमीनें सब तुम्हारी हैं?'

'हाँ! ...मेरे खयाल में सब हमारी ही हैं।'

वह फिर चुप हो गई। विमल को लगा वह कुछ खास पूछना चाह रही है। 'सुनो विमल! एक बात बताओगे?', सीता ने पूछा।

विमल ने सिर हिलाया।

'तुम्हारी शक्ल क्या तुम्हारे भाई से बहुत मिलती है?'

विमल इस प्रश्न से विस्मित हो उठा। थोड़ा अचकचा भी गया। उसने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया था। दूसरों को इस बारे में बात करते भी नहीं सुना था। सुना होगा तो याद नहीं रहा। लेकिन भाई से शक्ल तो मिलनी चाहिए, उसने सोचा और कहा, 'हाँ!'

सीता ने एक बार फिर उसे सिर से पैर तक अच्छी तरह देखा। फिर कुंड में देखने लगी।

'लेकिन', विमल ने सोचकर पूछा, 'आपने उन्हें देखा नहीं है?'

'नहीं। जब सुशीला की शादी हुई तो मैं लाहौर में बीमार थी। मेरी शादी में वे आए नहीं थे। सिर्फ सुशीला आई थी!' यह कहकर वह चुप हो गई।

चारों तरफ सन्नाटा था। कभी-कभी पक्षियों का स्वर सन्नाटे पर सलवटें पैदा कर देता था - जैसे वे पुल के नीचे पानी पर पड़ रही थीं।

एकाएक दोनों चौंक पड़े। किसी के खाँसने की आवाज सुनाई दी। नदी की तरफ से एक जाट आ रहा था। वह पास आया तो उसने विमल से 'शाह, सलाम!' कहा और कस्बे की तरफ बढ़ गया।

'चलिए! देर हो रही है।'

'चलो! अब मैं सैंडल पहन लूँ।'

'हाँ। अब काफी रास्ता पक्का है।'

सीता ने पैरों को देखा। धूल से सने थे।

'आप पैर धो लीजिए।'

'कहाँ?'

'पुल के नीचे से। उधर से रास्ता है।'

'किधर है?' वह पुल के जँगले पर झुक गई। पुल जहाँ खत्म होता था वहाँ से पानी की तरफ पुल के साथ-साथ एक पतली पगडंडी ढलान से जाकर पानी को छू रही थी। सीता उसे कुछ देर तक देखती रही। विमल ने देखा, झुकी सीता के वक्ष में जंगला खुभ रहा था। उसे गुड्डी की बाँह याद हो आई और उस पर पड़ा लाल निशान!

'साँप तो नहीं होगा?' सीता ने थोड़ा डरकर पूछा।

'नहीं। आजकल नहीं होते। बरसात में आते हैं।'

उसने साइकिल से सैंडल उतार ली और दोनों पानी के पास आ गए। यह जगह पुल के एकदम नीचे थी। पुल के तख्तों का निचला हिस्सा दिखाई दे रहा था। मटियाले और सूखे तख्तों पर जाले लटक रहे थे। कोनों में मिट्टी जमा थी जहाँ से एक-दो पौधे सिर निकाले खड़े थे।

सीता ने बैठकर पैर पानी में डाल दिए।

'पानी ठंडा है।' उसने बच्चों की तरह खुश होकर कहा। पैर डालते ही छोटी-छोटी मछलियाँ पैरों के पास आ गईं।

'हाय मरी!' वह चीख उठी और पैर बाहर निकालकर भागने के लिए खड़ी हो गई। विमल की हँसी छूट गई।

'मछलियाँ हैं', उसने कहा। 'कुछ नहीं कहतीं।'

'मुँह लगाती हैं तो गुदगुदी होती है।'

इस पर विमल और भी हँसने लगा। धीरे-धीरे वह भी हँस पड़ी। हाथ से पानी लेकर उसने पैरों को अच्छी तरह से धोया। फिर उन्हें पानी में डाल दिया। गुलाबी पैर पानी में उसे बहुत अच्छे लगे। उसने देखा, उसका चेहरा भी हल्का गुलाबी है। उसकी गर्दन गोरी थी और गर्दन के नीचे भी रंग गोरा था। झुकी होने से उसका दुपट्टा उतरकर घुटनों पर आ गया था। उसका वक्ष दिखाई दे रहा था। वह और भी गोरा और मुलायम लग रहा था।

विमल अजीब आकर्षण से उसे देखने लगा। सीता ने झुके-झुके ही उसे देखा।

वह मुस्कराई और हाथ से पानी के छीटे उस पर मारकर कहा, 'विमल!' विमल चौंका और उसे मुस्कराकर दुपट्टा ठीक करते देख शर्म से लाल हो गया। एकाएक उठ खड़ा

हुआ। 'साइकिल देख आऊँ।' कहकर वह जल्दी-जल्दी ऊपर आ गया। (बाद में उसे अपनी यह चालाकी बहुत अच्छी लगी)। 'मैं भी आ रही हूँ', को उसने अनसुना कर दिया।

वह भी उसके पीछे भागती-भागती आ गई। दोनों खामोश थे। सीता ने उसे संजीदा देखकर मुस्कराना बंद कर दिया।

'बैठिए!'

वह बैठ गई तो विमल साइकिल बहुत तेज चलाने लगा। देर हो गई थी। सूरज निकल आया था।

कुछ ही मिनटों में वह शीशम के पेड़ों को पार कर नदी के किनारे पहुँच गया। वहाँ फिर रेत थी। लेकिन नावों का पुल अब सामने ही था। वे उतर गए। सीता ने चुपचाप सैंडल उतारकर साइकिल के पीछे रख दिए। विमल मुस्करा दिया। वे चुपचाप चलने लगे। रास्ता बिलकुल नदी के किनारे पर था। सूरज निकलने से शांत बहते पानी का थोड़ा गँदलापन दिखाई देने लगा था। हवा से किनारे पर लहरें लप्-लप् टकरा रही थीं।

रास्ता तंग था। दोनों एकसाथ नहीं चल सकते थे। विमल पीछे था। पीछे से उसने सीता की बनावट को देखा। औरतें दौड़ नहीं सकतीं, उसे खयाल आया। स्कूल में भी जो लड़के दौड़ नहीं सकते, उन्हें 'औरत' कहकर छेड़ा जाता है।

'आपको तैरना आता है?' उसने ऐसे ही पूछा।

'नहीं! औरतों को कौन सिखाता है?' वह हँस पड़ा।

'मैं यह नदी पार कर लेता हूँ', उसने गर्व से कहा, 'बाढ़ में नहीं। आजकल।'

'इसमें मगरमच्छ नहीं होते?'

'होते हैं। मगर वे ऊपर गहरे पानी में रहते हैं।'

'नीचे भी आ सकते हैं। तुम्हें ध्यान से तैरना चाहिए।'

'मैं अकेला थोड़े होता हूँ', उसने सफाई देते हुए कहा, 'हम चार-पाँच लड़के होते हैं।'

'फिर भी जान से नहीं खेलना चाहिए।' उसे लगा - सीता मानो गुस्सा हो रही थी। पुल के नीचेवाली बात पर, उसने सोचा। वह चुप हो गया। वह भी चुप थी।

'सुनो', वह एकाएक बोली, 'मुझे तैरना सिखा सकते हो?'

'आपको? हाँ। सिखा सकता हूँ।' उसने कहा मगर उसे पूरा विश्वास नहीं था क्योंकि उसने देखा वह बहुत भारी थी। और शुरू-शुरू में बाँहों के ऊपर डालकर तैरना सिखाया जाता है। मगर उसे याद हो आया।

'आप तो जा रही है।'

सीता ने अनमने ढंग से देखा। 'हाँ!', उसने कहा और सामने देखने लगी। सामने नावों का पुल था।

सूरज की किरणें सुइयों की तरह चुभने लगी थीं। पुल के पास पहुँचते-पहुँचते दोनों पसीने से भीग चुके थे।

विमल ने साइकिल एक तरफ खड़ी कर दी और जोर-जोर से आवाज देने लगा, 'शफी! शफी' झोंपड़ी में कोई नहीं था। मगर उसकी आवाज सुनकर झोंपड़ी के पीछे से एक आदमी निकल आया। नाटा काला आदमी था। हरे तहमद के ऊपर किरोशिए से बुनी बनियान पहने था।

'छोटे शाह!' उसने कहा और उचटती निगाह से सीता को देखा।

'छोटे शाह! ...बड़ा अफसोस है। इस जवानी में...' उसने धीरे-धीरे कहना शुरू किया। विमल ने सुना था कि भाई साहब की मौत पर शफी बहुत रोया था। असल में वह भाई साहब का खास आदमी था। मुरगाबियों का शिकार करने जाते तो शफी को साथ ले जाते। विमल को लगा वह अब भी रोना चाहता है मगर सीता को देखकर दुविधा में है।

'जो खुदा को मंजूर है, शफी।' उसने बुजुर्गों की तरह कहा। इसके बाद दोनों कुछ देर चुप खड़े रहे।

'सुबह-सुबह कैसेट आना हुआ?' शफी ने पूछा।

'ऐसे ही - पार कोई ताँगा तो नजर नहीं आया?'

'नहीं, अभी तक कोई नहीं आया।'

'अब तक तो आ जाना चाहिए था।'

दोनों ने पार देखा। मगर कुछ दिखाई नहीं दिया।

'मैं अभी देख के आता हूँ!', कहकर शफी भागता हुआ पुल को पार करने लगा। विमल ने सोचा उसे कहे, साइकिल ले जाओ। मगर उसे याद आया शफी को साइकिल चलानी नहीं आती। वह अक्सर नदी पर ही रहता था। कस्बे में कम ही आना होता था।

वे दोनों थक गए थे। विमल की इच्छा हुई शफी की झोंपड़ी में जाकर थोड़ा आराम करने की। मगर शफी मुसलमान था। घर में मालूम हो गया तो बुरा होगा। उसे पता था घर में मुसलमानों के लिए अलग बर्तन रखे रहते हैं और वे ड्योढ़ी के आगे नहीं जा सकते। उनका छुआ खाने की सख्त मनाही थी। वैसे वह खुद जब भी नहाने-तैरने आता तो अक्सर शफी से बातें करता। शफी बहुत बड़ा तैराक था। कई बार प्यास लगने पर (नदी का पानी गंदा होता था) वह शफी के मटके से पानी पी चुका था। घर में अभी इसकी खबर नहीं लगी थी।

लेकिन बावजूद थकावट और धूप के, उसकी हिम्मत शफी की झोंपड़ी में जाने की नहीं हुई।

'आओ, हम भी देखें!'

दोनों पुल के पास चले गए और पार देखने लगे। कुछ भी दिखाई नहीं दिया। चार-पाँच पेड़ थे। बीच में मटियाली जमीन। इर्द-गिर्द रेत। इतने में शफी हाथ हिलाता दिखाई दिया।

'ताँगा आ गया है।' उसने दूर से आवाज दी।

वह एकाएक मुड़ी और उसने चुपके से सैंडल पहन लिए। विमल ने थैला उतारकर हाथ में ले लिया। सीता बहुत खामोश हो गई थी। नावों के पुल पर वे धीरे-धीरे चलने लगे। पुल के नीचे गँदला गहरा पानी था। नावों के साथ बुलबुले बनाता तेजी से बह रहा था। पुल पर आती-जाती बैलगाड़ियों से गिरा भूसा बिखरा था। चलने में दिक्कत होती थी। दूसरे किनारे पर पहुँचते ही ताँगा पेड़ों के झुरमुट से निकलकर पास आ गया। उसमें से एक नाटा भारी आदमी उतरा। उसकी मूँछें बड़ी-बड़ी थीं और सिर पर तर्रेवाली पगड़ी थी।

विमल ने उसे नमस्ते की। उसने सिर हिलाया मगर मुँह से कोई जवाब नहीं दिया। सीता ने अपने पति की तरफ देखा मानो आशा कर रही हो कि वह कुछ कहेगा। वह कुछ नहीं बोला। ताँगे के पास खड़ा उन्हें देखता रहा।

सीता कुछ देर तक वैसे ही खड़ी देखती रही, फिर पास खड़े विमल के गले में बाँह डालकर उसे एक तरफ ले गई। उससे पसीने, हल्के पाउडर और उसके शरीर की मुलायम गंध आ रही थी। उसने देखा वह रो रही है।

'अपनी भाभी का खयाल रखना!' उसने कहा। विमल भी रोने लगा। सीता ने उसके हाथ को पकड़ लिया और हथेली पर पाँच का मुड़ा नोट रख दिया। 'यह तुम रख लो।'

'नहीं, नहीं...!' उसने रोते हुए कहा। नोट जमीन पर गिर पड़ा। सीता ने फिर अपने पति को देखा और फुर्ती से झुककर नोट उठा लिया।

'नहीं, विमल! ऐसा नहीं करते। मैं तुम्हारी भाभी की तरह हूँ।' और वह फिर उसे नोट देने की कोशिश करने लगी।

'नहीं, नहीं।' विमल ने ज़िद की।

एकाएक उसे अपने भाई की याद हो आई। जब उनकी शादी हुई थी तो उन्हें भी लोग अक्सर रुपये देते थे। मगर वे लेते नहीं थे।

'नहीं, नहीं। यह गलत है।' विमल ने भाई की नकल लगाते हुए कड़ककर कहा। सीता थोड़ा सकते में आ गई। उसने गौर से विमल के आँसुओं से भरे दृढ़ चेहरे को देखा। फिर झुककर उसका माथा चूम लिया। विमल ने माथे की तरफ आते उसके संतरे की फाँकों-जैसे होठों को देखा। चूमकर वह विमल को देखने लगी। विमल ने आँखें नीची कर लीं।

'चलो न भई! यह क्या तमाशा है?' तीखी भारी आवाज पीछे से आई।

'अच्छा विमल! कभी हमारे घर आना!' कहकर वह जल्दी-जल्दी ताँगे में बैठ गई। विमल ने देखा किस तरह उसकी देह से ताँगे की सीट भर गई। ताँगा चला तो उसने नमस्ते की और मुड़कर पुल पार करने लगा।

वापस वह जल्दी ही पहुँच गया। गली के मोड़ पर पहुँचते ही उसे पता चला कि अभी रोना शुरू नहीं हुआ है। उसने साइकिल बाहर खड़ी कर दी (उसे मालूम था इंदर उसे तुरंत ले जाएगा) और अंदर चला गया। ड्योढ़ी में भाभी, माँ और बड़ी बहन चुप बैठी सामने ताक रही थीं।

उन्हें देखकर वह खड़ा हो गया।

'छोड़ आया?' भाभी ने पास बुलाकर उसे पूछा।

'हाँ।'

जीजाजी आ गए थे?'

'हाँ। हमारे पहुँचते ही उनका ताँगा आ गया था।'

फिर भाभी के होंठ रोने के लिए फड़फड़ाए। वह कुछ और कहना चाहता था, मगर चुप हो गया। उसने देखा, भाभी और सीता के होंठ बहुत मिलते हैं। लेकिन मुँह मोड़कर वह उठा और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ गया।